संस्कृत साहित्य में छिपा खजाना

जब भी मैं बंगलौर सिटी रेलवे स्टेशन के प्लेटफॉर्म एक पर निरीक्षण के सिलसिले में अथवा कोई ट्रेन पकड़ने के लिये जाता हूँ, वहाँ स्थित गीता प्रेस की आउटलेट मुझे विशेष रूप से आकर्षित करती है और मैं इस दुकान पर दो चार मिनट रुकने व वहाँ करीने से सजी सुंदर, रंगबिरंगी कवर वाली अनेक आध्यात्मिक व धार्मिक पुश्तकों को निहारने , और लगे हाथ पसंद आयी एक दो पुस्तक भी खरीदने से स्वयं को नहीं रोक पाता ।यहाँ इतनी महत्वपूर्ण व सुंदर पुस्तक और इतने कम दाम में मिलती है कि मन अचंभित व प्रफुल्लित हो जाता है।

अभी हाल ही में मैंने यहाँ से दो- तीन पुस्तकें खरीदीं- कन्नड़ भाषा में सुंदरकांड व श्रीमद्भागवत गीता (मैंने ताजा-ताजा ही कन्नड़ भाषा पढ़ना व लिखना सीखा है और इसीलिये इन प्रिय व पूर्वपरिचित पुस्तकों जिनको पहले ही बार-बार पढ़ने से उनका कुछ अंश कंठस्थ सा है , को कन्नड़ भाषा में पढ़ने में बड़ा ही मजा आ रहा है।) और एक अन्य अद्भुत पुस्तक जो मुझे मिली वह है ईशादि नौ उपनिषद शंकर भाष्यार्थ सहित ।

वैसे एक-दो उपनिषद् – कठोपनिषद, मांडूक्योपनिषद् मैंने पूर्व में भी पढ़ा था किंतु ज्ञान के इस अद्भुत संकलित पुस्तक जिसमें ईषोपनिषद् सहित नौ उपनिषदों – ईश,केन,कठ,प्रश्न,मुण्डक,माडूक्य,ऐतरेय,तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर,इनके मुख्य मंत्र व इनकी अर्थ सहित व्याख्या,और इनका आदि शंकराचार्य द्वारा लिखित भाष्य को पढ़कर एक अपूर्व अनुभव हो रहा है।

वेद हमारे मौलिक ज्ञान हैं जो परमसत्य- इस विश्वरूपी परमसत्ता के कारणतत्व, परम ब्रह्म अथवा आत्मा को जानने हेतु माध्यम हैं। वेद के तीन विभाग हैं- कर्म,उपासना और ज्ञान।जहाँ कर्मकांड और उपासनाकांड का लक्ष्य हमारे मन में उस परमब्रह्म को जानने व प्राप्त करने की योग्यता का निर्माण करना है, वहीं ज्ञानकांड उस परमब्रह्म के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या व इनका विचार प्रदान करता है।वेद के इसी ज्ञानकांड का नाम ही उपनिषद् है।

उपनिषद् परमब्रह्म अथवा आत्मन के यथार्थ स्वरूप का बोध कराते हैं।विषय की गूढ़ता व रहस्यात्मकता के कारण इनके मौलिक स्वरूप में इनके मंत्रों का अर्थ समझना आम व्यक्ति के लिये सहज नहीं था, अत : समय-समय पर कई मनीषियों,चिंतकों व आचार्यों ने इनपर टीका व भाष्य लिखे, जिनमें आदि शंकराचार्य रचित भाष्य सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

उपनिषद् सकल विश्व एकात्मकता के अद्भुत दर्शन सिद्धांत व ज्ञान के आधार हैं, और यह कहना अतिसयोक्ति नहीं होगा कि संसार में अद्वैत दर्शन आधारित किसी भी धर्म अथवा संप्रदाय का आधार उपनिषद् में निरूपित सिद्धांत ही हैं।

हर उपनिषद् का प्रारंभ एक शांतिपाठ श्लोक से होता है जो सकल विश्व चराचर जगत के सुख-शांति व मंगल की कामना है। ईशोपनिषद् का शांतिपाठ है सर्वप्रसिद्ध श्लोक –

ॐ पूर्णमद : पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।। ॐ शान्ति : शान्ति : शान्ति :।
अर्थात् ॐ वह परब्रह्म पूर्ण है,और यह (जगत स्वरूप कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति होती है ।तथा प्रलयकाल में पूर्ण(जगत स्वरूप कार्यब्रह्म) का पूर्णत्व लेकर अर्थात् स्वयं में लीन कर पूर्ण(परमसत्य व परमब्रह्म)ही शेष बचता है।

भला विश्व एकात्मकता व एकस्वरूपरता की इससे परम सुंदर व स्पष्ट कामना व स्तुति क्या हो सकती है ?

ईशोपनिषद् का प्रथम श्लोक सर्वत्र ईश्वर दृष्टिभाव का अद्भुत मंत्र है-
ॐ ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध : कस्यस्विद्धनम्।
अर्थात् जगत में जो भी स्थावर-जंगम है, वह सब परमपिता ईश्वर द्वारा आच्छादित है अर्थात् सब कुछ ईश्वर स्वरूप है। उसके ऊपर अधिकार जताने की भावना का त्याग कर, व किसी अन्य के धन की इच्छा न करते हुये तू अपने कर्तव्य का पालन कर।

वर्तमान समय में जब हमारे चारों ओर नैतिक मूल्यों में भारी गिरावट आयी है, भ्रष्टाचार,बेईमानी,पाखंड व अनाचार का बोलबाला व प्रभुत्व बढ़ गया है, ऐसे में उपनिषद् के इन सकल-कल्याण-कामना-मयी मंत्र अति सार्थक व महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

ईशोपनिषद् का छठाँ श्लोक मनुष्यों के पारस्परिक वैमनस्य व घृणा को सर्वथा निराधार व औचित्यरहित बताता है-
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।
अर्थात्- जो मनुष्य सभी मनुष्यों को स्वयं की आत्मा मों ही देखता है और सभी भूतों में भी स्वयं की ही आत्मा को देखता है, वह इस सार्वात्म्यदर्शन के कारण किसी से भी घृणा नहीं करता।

और इस सार्वात्म्यदर्शन के कारण जब सारे मनुष्य स्वयं की ही आत्मा के स्वरूप दिखते हों भला उस जागृत ज्ञानमयी व्यक्ति को क्या शोक व मोह हो सकता है ? –
यस्मिन्सर्वाणि मूतान्यात्मैवाभूद्विजानत : ।तत्र को मोह : क : शोक एकत्वमनुपश्यत :।

इसी तरह विभिन्न उपनिषद् के अनेकों मंत्र व पाठ सार्वात्मदर्शन के अलौकिक ज्ञानज्योतिपुंज हैं ।इनके पढ़ने व भावार्थ को समझते ही मानों हमारे स्वयं के ही अंदर अवस्थित एक ढके हुये ज्ञान-निधि पर से आवरण हट जाता है और इस तरह हमें स्वयं में ही परमसत्य व आत्मसाक्षात्कार का अपूर्व अनुभव होता है। ईशोपनिषद् का पंद्रहवा मंत्र इसी का आह्वान करता है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।
अर्थात् – परमसत्य स्वरूप ब्रह्मन् का मुख हमारे अंतस्थल मे ही स्थित ज्ञानरूपीसूर्य को मायास्वर्णपात्र से ढका हुआ है ।हे पूषन् !इस ढकने को हटा मुझे सार्वात्मरूपी परम ब्रह्म का अनुभव व प्राप्ति कराओ।

उपनिषद् के हर नये मंत्र को पढ़ने व उनके अर्थ को जान एक अलौकिक आनंद की अनुभूति हो रही है।

आशा करता हूँ यह आनंद जारी रहेगा व इसे आगे भी यहाँ साझा कर सकूँगा।

साभार- http://ddmishra.blogspot.com/ से